आद्यश्री शंकराचार्यकी स्तोत्र-साहित्य यात्रा

डॉ. हंसा अनुपसिंह परमार
संस्कृत विभागाध्यक्ष, पी. जी. इन्चार्ज
श्रीमती जे. पी. श्रॉफ, आर्ट्स कॉलेज,बलसार

स्तोत्र का शब्दार्थ - व्युत्पत्ति - पर्याय

"टु स्तुतौ' धातु से करन के अर्थ में "दानिशस्..." पाणिनिसूत्र द्वारा ट्रन = त्र प्रत्यय लगाकर स्तुत. शब्द बना। "स्तूयते अनेन इति स्तोत्रम"।

स्तोत्र का पर्यायवाची प्रचलित शब्द आराधना भी है। अर्थवाद, प्रशंसा, स्तोत्र, इड़ा, विकत्थन, स्तव, वाघा, इत्यादि अन्यभी पर्यायवाची शब्द का प्रयोग होता है।

सबसे पहले स्तोत्र शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में ३-३१-१४ और ५-५५-०९ में मिलता है। इससे तय होता है की स्तोत्र का मूल वेद में निहित है।

शंकराचार्यजी ने धर्म-दर्शन-क्षेत्र में ब्रहज्ञान के प्रचार के लिए उपनिषदों के तात्विक सिद्धान्तों को मनोहर रीति से स्तोत्रों में ग्रथित कर दिए । शंकर के अवतार स्वरूप आचार्य शंकर प्रमुख्तः शैवमार्गी होने पर भी उन्होंने उपनिषद का निर्गुण ज्ञानमार्ग और उसके अनुकूल सगुन ईश्वर की उपासना का मार्ग प्रशस्त किया । शिव, विष्णु, गणपति, शक्ति इत्यादि पंचायतन देव एक ही निर्गुण ब्रह्म के सगुन स्वरूप है ।

उनकी उपासना से ब्रह्म ज्ञान की पात्रता निष्पन्न होती है । इसी सत्य को प्रतिपादित करने शंकराचार्य ने विभिन्न देव स्वरूपों के भक्तिभाव सभर स्तोत्रों की रचना की ।ब्रह्म का स्वरूप जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, किन्तु उस स्वरूप के ज्ञान के पश्चात् भक्ति उपासना के बिना उस परमतत्त्व के प्रति निष्काम निर्मल प्रेम का प्रादुर्भाव संभव नहीं । यह सत्य शंकराचार्य जी के स्तोत्र के माध्यम से प्रकट होता है । फलतः इनके स्तोत्र दो प्रकार के है : भक्तिप्रधान और ज्ञानप्रधान ।

प्रायः २०० जितने स्तोत्र शंकराचार्य जी के नाम पर उपलब्ध है किन्तु उनमे से कतिपय स्तोत्रों का कर्तृत्व संदिग्ध है। संस्कृत साहित्य के इतिहासकारो का भी ऐसा सूर है । अद्वैत विचारधारा के आधार पर इनमे से कई स्तोत्रों का कर्तृत्व आद्य श्री शंकराचार्यजी का सिद्ध होता है ।

जगतगुरु शंकराचार्य के स्तोत्रों में भक्ति और वेदांत ज्ञान का समन्वय हुआ है। अद्वैतसिद्धांत या उपनिषदीय ज्ञान मार्ग उनके स्तोत्रों में सरल मधुर भाषा में अभिव्यक्त हुआ है । साधन चतुष्टयी के द्वारा ब्रह्मज्ञान का मार्ग श्रेष्ठ है और इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति संभव है । अपने इस सिद्धांत के निरूपण के लिए आचार्य श्री प्रासादिक शैली में कर्मो का त्याग करके केवल भगवान में चित्त लगाने के लिए कहते है। (शिवापराध -क्षमापन - स्तोत्र, ११)

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' समझकर, तत्त्व को पहचानकर आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मपद प्राप्त करने का वेदांती सन्देश आचार्यश्री ' द्वादशपञ्जरिकास्तोत्र' में देते है (लोक ३) । इस स्तोत्र के चतुर्थ पद में मायावी संसार की निरर्थकता अंकित हुई है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह श्रुति वचन शंकराचार्यजी सार्थक दलील द्वारा प्रस्तुत करते है।

ऐहिक - पारलौकिक विषयसुख की तृष्णात्याग की वैरागी भावना 'द्वादशपअरिका' और 'चर्पटपञ्जरिका' जैसे स्तोत्रों में सरल रीति से प्रकाशित हुई है । ब्रह्म के अतिरिक्त सबकुछ क्षणभंगुर होने से आचार्यश्री नित्यानित्वस्तुविवेक करने का बोध प्रदान करते है (शिवापराधक्षमापन, १२) । जीवन नलिनिदल पर स्थित जलबिंदु के समान चंचल है (द्वादशपंजरिका, १०)। कर्मकांड की निरर्थकता एवं लम्पट साधुओ और सम्प्रदायों पर जगदगुरुधी कुठाराघात करते है (चर्पटपंजरिका, ४, १७) ।

औपनिषदिक निराकार ब्रह्म का निरूपण भगवान शंकराचार्य 'देव्यपराधक्षमापन', 'भवान्यष्टक' 'वेदांतसार -शिवस्तव', 'आनंदलहरी', 'हरिमीडे' इत्यादि स्तोत्रों में करते है । बहुदेववाद की निरर्थकता के साथ एकमात्र भवानी का आचार्यश्री शरण लेते है।

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित ।
न जानामि चान्यत सदाहं शरण्ये गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानी ।। (भवान्यष्टक, ६)

'वेदसारशिवस्तव' में शंकराचार्यजी शिवजी पर ब्रह्म और विष्णु के कार्यों का आरोपण करके त्रिमूर्ति देवो का एकत्व स्थापित करते है (श्लोक ५) शिव और विष्णु एक ही परमात्मा के केवल भिन्न भिन्न नाम है और देवी उस परमात्मा की जगतमाता मायाशक्ति है , ऐसी ध्वनि ऐसे पदों से अभिव्यंजित होती है। जीव ब्रह्म की एकता का अद्वैत सिद्धांत मनोहर रीति से प्रस्तुत करते हुए शंकराचार्य कहते है की सर्वत्र आत्मा का दर्शन कर भेदस्वरूप अज्ञान का त्याग कर (द्वादशपंजरिका, ८)। 'निर्वाणषटक' के सभी पद अद्वैत सिद्धांत व्यक्त करते है। 'वेदसारशिवस्तव' में आचार्यश्री आदि अंत - द्वैतरहित परम पवित्र परमात्मा की शरण में जाते है (श्लोक ७)।

वेदांती आचार्य शंकर के स्तोत्रों में भक्तिभाव की महत्ता और कर्मफलत्याग की निष्काम निर्गुण भक्ति अनुभूत होती है । ईश्वर के प्रति निःस्वार्थ प्रेमभावनास्वरूप भक्ति का दर्शन हमें उनके स्तोत्रों में अवश्य होता है। मोक्ष, विभव, विज्ञान और सुख की अभिलाषा से रहित आचार्यश्री तो शिव - शिव, भवानी, रुद्राणी इत्यादि नामों का जप करते करते ही आयुष्य व्यतीत करने की कामना रखते है - (देव्यपराधक्षमापन, ८)

जिसमे निष्काम भक्ति की पराकाष्ठा अनुभूत होती है । गुरुदेव के चरणारविन्दों के अनन्य भक्त बनकर संसार से मुक्त होने के आदेश में आचार्यश्री भक्ति की महत्ता बता कर निरंतर गोविन्द को भजनेको कहते है (द्वादशपंजरिका, १२)।

स्तोत्रकाव्य का एक प्रमुख लक्षण है भक्तहृदय के अन्तः करणमें से निःसृत आर्तनाद । शंकराचार्य के स्तोत्रों में आर्तनाद करुण बनके समर्पण भाव में परिणत होता है । देवी की कृपाप्राप्ति के लिए आचार्यश्री निरालम्ब बन पुकारते है, देवी के शरणागत होते है - निरलम्बो लम्बोदरजननि कं यामी शरणम् (देव्यपराधक्षमापन, ६) । अपने अपराधों का स्पष्ट स्वीकार करके आचार्यश्री उपास्य के पास क्षमायाचना करते है ।

नवधा भक्ति की चरम परिणति आत्मनिवेदन और शरणागति है। शंकराचार्य देवी, शिव या विष्णु के समक्ष मानो उपस्थित हो अपना हृदय खोल देते है, आत्मपरीक्षण करते है और अपने अपराधों का निर्मल दिल से एकरार करके बालक सी निर्दोषता के साथ उपास्य का अनुनय करते है। इसमें एक सच्चे भक्त का हृदय प्रकट होता है।

शंकराचार्य की कविता का परम सौंदर्य 'सौन्दर्यलहरी' में प्रस्फुरित हुआ है। भगवती त्रिपुर सुंदरी के अंग - प्रत्यंग की मनोहारिता का भव्य वर्णन उसमे है। तंत्रशाश्त्र के प्रभाव से आरम्भिक ४० पदों में तांत्रिक रहस्यों का आलेखन स्तोत्र को गूढता के प्रति ले जाने पर भी उसका साहित्यिक सुन्दर्यै चित्तहर है। श्लोक – ४१ से भगवती का केशादीपादांत वर्णन है। उसके प्रत्येक पदमें शंकराचार्य की अभिराम कल्पना दृष्टिगोचर होती है। स्तोत्रकाव्य में सौंदर्य वर्णन की ऐसी अलौकिकता दुर्लभ है।

आनंदलहरी में शंकराचार्यजी गिरिराज - कन्या उमा के अतुलनीय सौभाग्य का आलेखन करते है। आचार्यश्री की दृष्टि से भवानी तो चिदानंदलता है। मेघ दयाभाव से चातक के मुख में मधुर जल बरसता है। देवी की वृत्ति भी वैसी ही है। अत एव आचार्यश्री भक्ति के बिना भी देवी के पास दया की याचना करते है (श्लोक ९)। भगवती पार्वती का अनुलेपन जल और चरण धूलि ले ब्रह्मा सुरपुर की वनिताओं का सर्जन करते है (लोक १३)।

शंकराचार्य जी वेदांती होने पर भी उनके स्तोत्रों में शुष्कता के स्थान पर प्रासादिकता, मधुरता और संगीतात्मकता का अनुभव होता है। परिणाम स्वरूप वे वास्तविक गीतकार और स्तोत्रकार के रूप में अग्रिम स्थान प्राप्त करते है। इनके 'नर्मदाष्टक' में जललहरीओ के साथ जो स्वरलहरीओ का संगीतात्मक नाद सुनाई पड़ता है, वह उन्हें उत्तम गीति - कवि भी बना देता है। संस्कृत स्तोत्र साहित्य में अन्त्यानुप्रास - तुकांत का प्रयोग करने वाले शंकराचार्य संभवतः सर्वप्रथम है।

जगतगुरु शंकराचार्य विभिन्न प्रकार के देवस्तोत्र, अष्टक स्तोत्र, शक्ति स्तोत्र, वैष्णव-स्तोत्र, शैव- स्तोत्र, नदी स्तोत्र, मानसपूजा स्तोत्र, नखशिखवर्णन स्तोत्र इत्यादि के रचयिता होने से सभी प्रकार के स्तोत्र लक्षण उनके स्तोत्र साहित्य में निरूपित हुए है। आत्मनिवेदन, शरणागति, भावसौंदर्य, क्षमा याचना, हृदय की वृत्तिओ का प्रकाशन इत्यादि स्तोत्र लक्षणों का पल्लवित प्रफुल्लित स्वरूप सर्वप्रथम शंकराचार्यजी के स्तोत्रों में सहज माधुर्य से अनुभूत होता है।

फलतः स्तोत्र साहित्य के इतिहास में एक उत्तम स्तोत्रकार के रूप में सर्वप्रथम शंकराचार्य ही प्रतिष्ठित होते है।

सन्दर्भ

१. संस्कृत स्तोत्र ग्रंथावली, डॉ. गौतम पटेल, संस्कृत साहित्य अकादमी।
२. अद्वैतमार्तण्ड और शाङ्करवेदान्त, डॉ शारदा गुप्ता।